सिनेमा, नाटक और जनसंस्कृति: समाज का दर्पण और बदलाव का माध्यम

लतीफ़ अहमद बी.

सहायक प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष, हिंदी विभाग सेंट फ्रांसिस कॉलेज, कोरमंगला, बेंगलुरु

DOI: https://doi.org/10.5281/zenodo.18368460

ABSTRACT:

प्रस्तुत शोध आलेख भारतीय जनसंस्कृति के निर्माण और विकास में सिनेमा तथा नाटक की ऐतिहासिक एवं समकालीन भूमिका का विश्लेषणात्मक अध्ययन करता है। यह अध्ययन लोक-नाट्य परंपरा और 'इप्टा' (IPTA) के आंदोलनों से लेकर समानांतर सिनेमा और आधुनिक ओटीटी (OTT) प्लेटफार्मों तक की यात्रा को रेखांकित करता है। आलेख में यह विचार किया गया है कि कैसे नाटक ने सामाजिक चेतना की नींव रखी और सिनेमा ने उसे तकनीकी विस्तार दिया। साथ ही, यह भूमंडलीकरण और बाज़ारवाद के दौर में इन माध्यमों के समक्ष उपस्थित चुनौतियों, जैसे—महंगी होती कला और उग्र राष्ट्रवाद का परीक्षण करता है। निष्कर्षतः, यह शोध पत्र सिनेमा और नाटक को केवल मनोरंजन न मानकर, समाज के दर्पण और परिवर्तन के सशक्त माध्यम के रूप में स्थापित करता है।

KEYWORDS:

जनसंस्कृति, भारतीय सिनेमा, नाटक और रंगमंच, सामाजिक परिवर्तन, भूमंडलीकरण.

प्रस्तावना

संस्कृति किसी भी समाज की आत्मा होती है, और 'जनसंस्कृति' उस आत्मा के संघर्षों और उसकी सामूहिक चेतना से उपजती है। भारतीय संदर्भ में, कला के विभिन्न रूपों में नाटक और सिनेमा दो ऐसे शक्तिशाली माध्यम रहे हैं, जिन्होंने न केवल जनसंस्कृति को प्रतिबिंबित किया है, बल्कि उसे गढ़ा भी है। जहाँ नाटक अपनी जीवंतता और दर्शकों के साथ सीधे संवाद के लिए जाना जाता है, वहीं सिनेमा ने तकनीक के माध्यम से इस संवाद को वैश्विक विस्तार दिया है। भरतमुनि के 'नाट्यशास्त्र'[1] से लेकर आज के 'नुक्कड़ नाटक' और 'नेटफ्लिक्स' तक की यात्रा वास्तव में भारतीय जनमानस के बदलने की कहानी है। इस शोध आलेख का उद्देश्य

यह है कि कैसे ये दोनों माध्यम भारतीय जनसंस्कृति के वाहक बने हैं।

नाटक: जनसंस्कृति का आदि स्रोत

सिनेमा के आगमन से पूर्व, नाटक ही वह माध्यम था जो समाज को जोड़ता था। भारतीय ग्रामीण अंचलों में लोक-नाट्य केवल मनोरंजन नहीं, बल्कि सामाजिक शिक्षा का केंद्र थे। इसीलिए भारतीय परंपरा में नाटक को 'पंचम वेद' कहा गया है।

1.1 लोक नाट्य विधाएँ और जनसंस्कृति

सिनेमा के आने से पहले, ग्रामीण भारत में उत्तर भारत की नौटंकी, महाराष्ट्र का तमाशा, बंगाल की जात्रा और बिहार का बिदेसिया—ये सभी विधाएँ जनसंस्कृति के जीवंत उदाहरण रहे हैं। 'नवान्न' जैसे नाटकों ने बंगाल के अकाल और किसानों के शोषण को जन-विमर्श का हिस्सा बनाया तो भिखारी ठाकुर के 'बिदेसिया' ने न केवल मनोरंजन किया, बल्कि पलायन और विरह के उस दर्द को स्वर दिया जो उस समय के भोजपुरी समाज की सबसे बड़ी सच्चाई थी।[2]

1.2 इप्टा (IPTA) और जन नाट्य आंदोलन

1940 का दशक भारतीय नाटक के इतिहास में एक क्रांतिकारी मोड़ था। भारतीय जन नाट्य संघ (Indian People's Theatre Association) (IPTA) ने नाटक को महलों और पौराणिक आख्यानों से निकालकर सीधे जनता के मुद्दों से जोड़ दिया और सड़कों पर ला खड़ा किया। 'नवान्न' जैसे नाटकों ने बंगाल के अकाल की विभीषिका को जिस तरह मंच पर उतारा, उसने यह सिद्ध कर दिया कि नाटक जनचेतना को जाग्रत करने का सबसे धारदार हथियार है।[3] सत्तर और अस्सी के दशक में सफदर हाशमी और उनकी संस्था 'जनम' (Janam) ने नाटक को सीधे राजनीति और श्रमिक वर्ग से जोड़ा। नुक्कड़ नाटक मनोरंजन के बजाय 'प्रतिरोध' का स्वर बन गए, जो जनसंस्कृति की एक अनिवार्य विशेषता है।[4]

सिनेमा: तकनीक और जनसमूह का नया गठबंधन

बीसवीं सदी की शुरुआत में जब दादा साहब फाल्के ने 'राजा हरिश्चंद्र' बनाई, तो लोगों ने इसे 'बोलते चित्रों का नाटक' कहा। असल में यह भारतीय नाटक की ही अगली कड़ी थी। शुरुआती भारतीय सिनेमा पूरी तरह पारसी थिएटर की शैली और कथावाचन से प्रभावित था।[5] शुरुआत पौराणिक कथाओं (राजा हरिश्चंद्र) से हुई, लेकिन जल्द ही

सिनेमा ने सामाजिक बुराइयों पर प्रहार करना शुरू किया, जैसे 'अछूत कन्या' (1936)। इसमें जातिवाद के मुद्दे को जनसंस्कृति के केंद्र में रखा गया।

2.1. सामाजिक यथार्थ और स्वर्ण युग

1950 और 60 के दशक को भारतीय सिनेमा का 'स्वर्ण युग' कहा जाता है। इस दौरान महबूब खान की 'मदर इंडिया', बिमल रॉय की 'दो बीघा ज़मीन'—इन फिल्मों ने नेहरूवादी भारत के स्वप्न और ग्रामीण भारत की कठोर वास्तविकता के बीच के द्वंद्व को दिखाया। गुरुदत्त की 'प्यासा' जैसी फिल्मों ने राष्ट्र निर्माण के दौर में जनसंस्कृति की नई परिभाषा गढ़ी। ये फिल्में गरीबी, सामंतवाद और मानवीय गरिमा के द्वंद्व को पर्दे पर लेकर आईं।[6]

2.2 समानांतर सिनेमा: एक बौद्धिक हस्तक्षेप

70 के दशक में जब मुख्यधारा का सिनेमा 'मसाला फिल्मों' की ओर बढ़ रहा था, तब श्याम बेनेगल, सत्यजीत रे और मृणाल सेन जैसे निर्देशकों ने 'कला सिनेमा' के माध्यम से जनसंस्कृति के उन पहलुओं को छुआ जिन्हें व्यावसायिक सिनेमा अनदेखा कर देता था। यानी 'समानांतर सिनेमा' की नींव रखी। 'अंकुर', 'मंथन' और 'निशांत' जैसी फिल्मों ने जनसंस्कृति के उन अछूते पहलुओं को छुआ जो सहकारी आंदोलनों, सामंती शोषण और जातिवाद की परतों को उघाड़ते थे।[7]

3. जनसंस्कृति: नाटक और सिनेमा का प्रभाव

जनसंस्कृति का अर्थ है—वह जिसे जनता अपनाती है (Popular Culture/People's Culture)। सिनेमा और नाटक ने मिलकर भाषा, पहनावे और व्यवहार को गहराई से प्रभावित किया है।

- भाषा का लोकतंत्र: पारसी थिएटर के नाटकों और बाद में सिनेमा ने 'हिन्दुस्तानी' (हिंदी-उर्दू मिश्रित) भाषा को पूरे देश की संपर्क भाषा बना दिया।
- सामूहिक भागीदारी: सिनेमा हॉल भारत में वह एकमात्र स्थान बने जहाँ ऊंच-नीच और जाति के भेद मिट गए।[8] एक ही हॉल में बैठकर फिल्म देखना भारतीय जनसंस्कृति का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक अनुभव था।[9]

सिनेमा और नाटक का अंतर्संबंध

सिनेमा ने नाटक से अभिनय की तकनीक और कहानियाँ लीं, तो नाटक ने सिनेमा से तकनीक और व्यापक दृष्टिकोण लिया।

पक्ष	नाटक (Theatre)	सिनेमा (Cinema)
प्रस्तुति	जीवंत और तात्कालिक	रिकॉर्डेड और तकनीकी
पहुँच	सीमित (स्थानीय)	व्यापक (वैश्विक)
संवाद	द्विपक्षीय (दर्शक-कलाकार)	एकपक्षीय (परंतु गहरा प्रभाव)

4. समकालीन चुनौतियाँ: भूमंडलीकरण और डिजिटल युग

1991 के आर्थिक सुधारों के बाद जनसंस्कृति के स्वरूप में भारी बदलाव आया है। अब सिनेमा 'मल्टीप्लेक्स' तक सीमित हो रहा है, जिससे गरीब तबका धीरे-धीरे इस संस्कृति से बाहर होता जा रहा है।[10]

- नुक्कड़ नाटक का प्रतिरोध: सफदर हाशमी ने जिस नुक्कड़ नाटक परंपरा को विकसित किया, वह आज भी सत्ता के खिलाफ और जनता के पक्ष में खड़ा होने का साहस दिखाती है।
- मल्टीप्लेक्स संस्कृति: अब फिल्में आम आदमी के संघर्ष के बजाय 'एनआरआई' (NRI) और शहरी उच्च-मध्यम वर्ग की समस्याओं पर केंद्रित होने लगीं।
- ओटीटी (OTT) की भूमिका: इंटरनेट क्रांति ने एक बार फिर कहानियों को कस्बों की ओर मोड़ा है। 'पंचायत' या 'मिर्जापुर' जैसी वेब सीरीज सिनेमा के उस खालीपन को भर रही हैं जहाँ आम आदमी गायब हो गया था।

चुनौतियाँ और भविष्य

आज जनसंस्कृति के सामने सबसे बड़ी चुनौती 'व्यावसायीकरण' और 'सेंसरशिप' है।

- नाटक का सिमटना: महंगे होते प्रेक्षागृहों के कारण नाटक फिर से विशिष्ट वर्ग तक सीमित हो रहा है।
- सिनेमा में उग्र राष्ट्रवाद: हाल के वर्षों में सिनेमा का उपयोग राजनीतिक विमर्श को मोड़ने के लिए भी किया जा रहा है, जिससे वास्तविक जनसंस्कृति पीछे छूट रही है।

निष्कर्ष

सिनेमा और नाटक एक-दूसरे के विरोधी नहीं, बल्कि पूरक हैं। नाटक जहाँ सूक्ष्मता और गहराई प्रदान करता है, वहीं सिनेमा उसे व्यापकता देता है। जनसंस्कृति इन दोनों के बीच का वह सेतु है जो समाज को संवेदनशीलता प्रदान करता है। भविष्य में इन दोनों माध्यमों की सार्थकता इस बात पर निर्भर करेगी कि वे बाज़ार के दबाव में आकर केवल 'उत्पाद' (Product) बनकर रह जाते हैं या समाज का 'दर्पण' बने रहते हैं।

पाद टिप्पणियाँ

1. भरतमुनि, नाट्यशास्त्र, चौखंबा संस्कृत संस्थान, वाराणसी। (भारतीय नाट्य परंपरा के शास्त्रीय आधार और रसानुभूति के संदर्भ में)।
2. नेमिचंद्र जैन, भारतीय नाट्य परंपरा, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया। (लोक नाट्य के विकास और सामाजिक पृष्ठभूमि के लिए)।
3. सुधीर चंद्र, इप्टा और भारतीय जनमानस, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली। (इप्टा के माध्यम से कला के राजनीतिकरण के विश्लेषण हेतु)।
4. सफदर हाशमी, नुक्कड़ नाटक: जनचेतना का माध्यम, जन नाट्य मंच (जनम) प्रकाशन। (सड़क नाटकों के सामाजिक महत्व पर)।
5. बृजेश्वर वर्मा, भारतीय सिनेमा का इतिहास, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार। (शुरुआती सिनेमा पर पारसी थिएटर के प्रभाव के संदर्भ में)।
6. रामचंद्र गुहा, भारत: गांधी के बाद, (नेहरूवादी युग के सिनेमा और ग्रामीण भारत के यथार्थ के लिए)।
7. Madhav Prasad, Ideology of the Hindi Film: A Historical Construction, Oxford University Press. (फिल्मों की वैचारिकी और सामाजिक संरचना पर)।
8. Ashis Nandy, The Secret Politics of our Desires, Oxford University Press. (पॉपुलर सिनेमा और आम जनता के मनोविज्ञान के संबंधों पर)।
9. बद्री नारायण, लोकसंस्कृति और जनसंचार, सामयिक प्रकाशन। (लोक विधाओं के आधुनिक संचार माध्यमों में रूपांतरण पर)।
10. Rachel Dwyer, Bollywood's India: Hindi Cinema as a Guide to Contemporary India, Reaktion Books. (भूमंडलीकरण के बाद सिनेमा और वर्ग-भेद के विश्लेषण हेतु)।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. जैन, नेमिचंद्र (2003), दृश्य-अदृश्य, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
2. पाण्डेय, हृषिकेश (2012), सिनेमा और समाज, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
3. Dwyer, Rachel (2014), Bollywood's India, London: Reaktion Books.
4. हंस पत्रिका (2013), "भारतीय सिनेमा के सौ साल" (विशेषांक)।
5. NFDC Archives, History of Parallel Cinema in India.

Funding:

This study was not funded by any grant.

Conflict of interest:

The Authors have no conflict of interest to declare that they are relevant to the content of this article.

About the License:

© The Authors 2024. The text of this article is open access and licensed under a Creative Commons Attribution 4.0 International License.